

श्री भक्तामर महामण्डल पूजा

श्री मानतुङ्गाचार्य - भक्तामर मूल

श्री पं कमलकुमार जी कृत - हिन्दी पद्यानुवाद

श्री कविवर हेमराज जी कृत - हिन्दी पद्यानुवाद

भाषा टीका सहित

प्रकाशक:—

श्री जिन भक्ति प्रभाव प्रसारक मण्डल

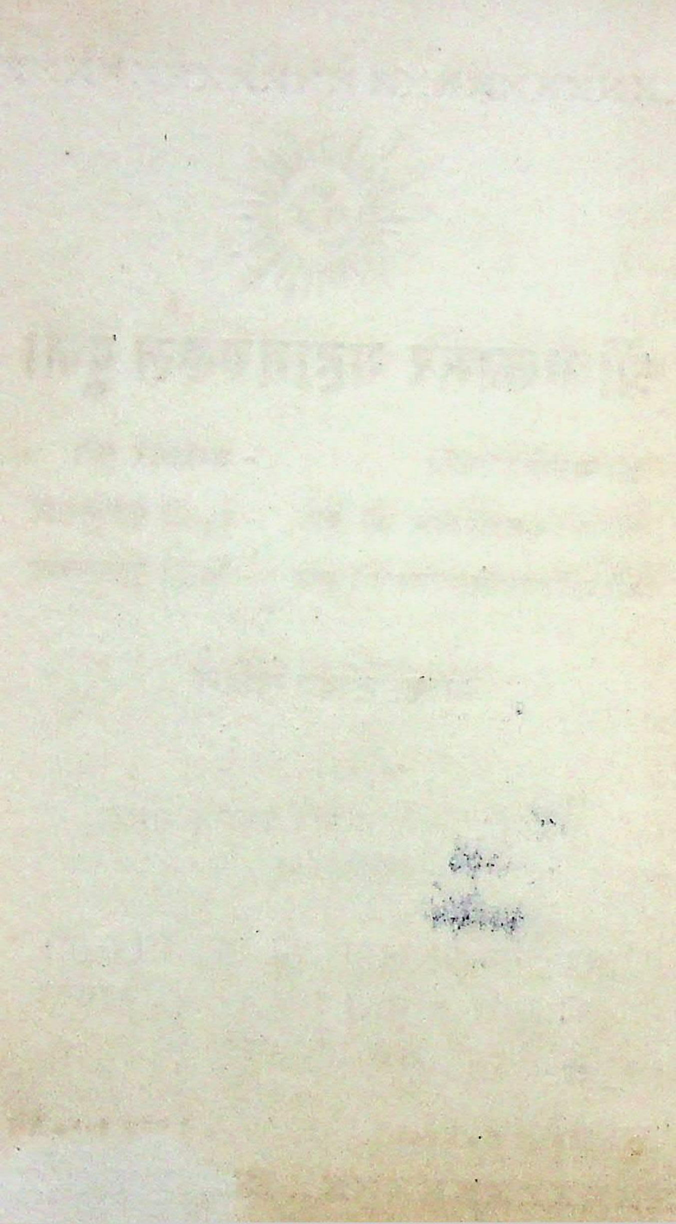
अशोकनगर

स्व० सेठ अभयकुमार जी चौधरी (बम्बई)

की स्मृति में अभय इन्डस्ट्रीज अशोकनगर

द्वारा सादर भेंट

वीर निर्वाण सं० २५०८] [मूल्य १-१० पैसे



प्राक्कथन

भक्तामर स्तोत्र या आदिनाथ स्तोत्र का महत्व जैन समाज में सर्व विदित हैं यह भक्ति रस का अपूर्व काव्य हर प्रकार के संकटों को टालने वाला है। इस महाकाव्य के पठन श्रवण मात्र से अनेकों कष्टों का नाश अपने आप होते पाये गये है।

अशोकनगर में विगत कई वर्षों से श्री बाबूलाल जी के तत्वाधान में "जिन भक्ति प्रभाव प्रसारक मण्डल" भक्तामर स्तोत्र के संस्कृत स्तोत्र के साथ श्री पं. कमलकुमार जी कृत हिन्दी पद्यानुवाद एवं श्री हेमराज जी कृत हिन्दी पद्यानुवाद को बड़े सुन्दर एवं प्रभावक ढंग से संगीत वद्ध कर अति भक्ति पूर्वक प्रस्तुत करता आ रहा है। जिसको अनेकों नर-नारियों ने ही नहीं अपितु बड़े २ विद्वान त्यागी एवं मुनिराजों ने मंत्र मुग्ध की तरह श्रवण कर हर्ष विभोर होकर मंडल की प्रशंसा की है एवं इस मंडल को अनेकों स्थानों पर आदर सहित बुलाकर कार्यक्रम करवाया है।

मंडल के अनुकूल सभी सामग्री एक ही पुस्तक में हो इसी बात को ध्यान में रखकर इस पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है यह पुस्तक पाठकों को लागत मूल्य पर ही विक्रय की जावेगी।

राजकुमार जैन
एम. ए. एल-एल बी.

(वीर प्रेस, अशोकनगर)

॥ ॐ ॥

मुनि श्री १०८ आर्यनन्द्री जी द्वारा मण्डल को शुभाशीर्वाद ।

खुरई

From- मुनि आर्यनन्द्री — दि० ११-६-७७

यः श्री बाबूलाल जी अशोकनगर जो भजन मण्डल के प्रमुख हैं । श्री आदि प्रभु की भक्ति में भक्तामर विधान मण्डल पूजा पूर्ण संगीत जो गाई गई बडे ही भक्ति विभोर और शास्त्रोक्त संगोत में गाई है इनके गुण गौरब के उपलक्ष में इनका और इनके भजन मण्डल का समाज में गौरव और वात्सल्य है ही हमारे सुनने में ऐसी पूजा पहिले ही आई, अत्यन्त, रोचक, प्रभावक, परिणाम कारक है भजनी मण्डल का साथ; साज व्यवस्था सुन्दर है । हमारा पूर्ण आशीर्वाद है कि, आपके मण्डल से जिन भक्ति का प्रभाव देश भर में फैले—सम्यक्त्व रत्नत्रय का प्रसार एवं प्रभाव होता रहे । श्री बाबूलाल जी को "संगीत-भूषण" पद्वी से समाज से गौरवान्वित किया जावे और इस मंडल का नाम "जिन भक्ति प्रभाव प्रसारक मंड़ल योग्य होगा ।

स्वामी मानतुंगाचार्य

—०: 卐 :०—

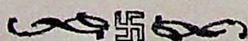
संक्षिप्त जीवनी

एक समय राजा भोज की सभा में कालीदास ने नाममाला नाम की पुस्तक को लेकर यह घोषणा की कि यह जैनियों की रचना नहीं है धनञ्जय वणिक हैं। वे ग्रथ-रचना क्या जाने।' इस पर धनञ्जय ने उनसे शास्त्रार्थ किया तथा जब कालीदास परास्त होने लगे तब बोले कि हम तुम्हारे गुरु मानतुंग से शास्त्रार्थ करेंगे। विद्वान धनंजय का पक्ष प्रबल है, यह बात महाराज भोज समझ चुके थे। परन्तु कालीदास के संतोष के लिये उनने अपना दूत मानतुङ्ग स्वामी के पास भेज दिया। दूत ने जाकर स्वामी मानतुङ्ग को राजाज्ञा सुनाई। वह बोला-महाराज भोज ने आपकी ख्याति सुनकर दर्शनों की अभिलाषा प्रगट की है। साथ ही आपसे दरबार में चलने का अनुरोध किया है। कृपया हमारे साथ ही चलने का कष्ट उठाइये। मुनिराज ने उत्तर दिया कि–भाई! राज सभा से हमें क्या प्रयोजन? जब हम खेती, व्यापार तथा याचना भी नहीं करते हैं तब हमें राजा क्यों बुलावेगा? अतएव कह दो कि हम उनके राजदरबार में जाना नहीं चाहते।

उत्तर सुनकर दूत लौट आया और जो कुछ उनने कहा था, राजा से कह सुनाया। राजा ने जब लगातार चार बार सेवकों को

भेजा पर वे नहीं आये, तब पाँचवीं बार उन्होंने आज्ञा दी कि जिस तरह हो पकड़ कर हाजिर करो। पश्चात् नौकरों ने ध्यानारूढ मानतुङ्ग स्वामी को राज्य-सभा में लाकर खड़ा कर दिया।

स्वामी मानतुङ्ग ने उपसर्ग समझ कर मौन धारण करना ही उचित समझा। बार २ राजा द्वारा अन्य व्यक्तियों द्वारा कहने पर भी उनके मुँह से एक अक्षर नहीं निकला। सब लोग कह कह के थक गये परन्तु काम कुछ भी नहीं हुआ इस पर राजा क्रोधित हो उठे। उन्होंने हथकड़ी बेड़ी डाल के अड़तालीस कोठरियों के भीतर बन्दी गृह में मजबूत ताले लगवाकर मानतुङ्ग स्वामी को कैद करा दिया। दरबाजे पर पहरेदार बैठा दिया गया। तीन दिन तक आचार्य ध्यान में लीन रहे। चौथे दिन उन्होने आदिनाथ स्तोत्र काव्य की रचना प्रारम्भ की। ज्योंही स्वामी ने पूरा स्तोत्र पढ़ा कि हथकडी, बेडी सब ताले टूट गये। स्वयं ४८ फाटक खुल पड़े। स्वामी जी बाहर चबूतरे पर आकर विराजमान हो गये। पहरेदार ने यह देखकर उन्हे फिर भीतर लेजाकर बन्द करदिया। पर कईवार ऐसा करने पर भी वे बार बार बाहर आ विराजते थे। राजा को इस घटना की खबर दी गयी। उनने फिर से बन्द करने की आज्ञा दी। राजाज्ञा का दो तीन बार पालन किया गया अन्त में महात्मा स्वयं राज्य सभा में उपस्थित हो गये महात्मा के दिव्य शरीर के प्रभाव से राजा का हृदय कांप उठा और राजा तथा कालिदास ने मुनिराज का प्रताप देख कर उनसे क्षमा मांगी।





श्री भक्तामर मण्डल पूजा

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ।

कल्याणकीर्तिममलं कमलाकरं तं,
सर्व्वार्चितोज्वलमहः प्रकटीतार्थं ।
उच्चैर्निधाय हृदि वीरजिनं विशुद्ध्यं,
शिष्टेष्टमादिपरमेष्ठिमहं स्तवीमि ॥ १ ॥

दीर्घाजवं जवविवर्तननर्तनार्तान्-
रार्त्रिप्रकर्तनविकर्तनकीर्तनश्रीः ।
उन्निद्रसान्द्रतरभद्रसमुद्रचन्द्रः,
सद्यः पुरुर्दिशतु शाश्वतमङ्गलं वः ॥ २ ॥

व्योमांगुलैर्मिमिति मुखं न कृतं न तारा,
धारा घनस्य गणिताधरणी पदैश्च ।
त्वां स्तोतुमुद्यतमतिर्मम नेतिधाधार्ष्ट्यं,
मोक्षाय युक्तिघटको भगवांस्त्वमेव ॥ ३ ॥

सद्वागगोचरभवत्सहजस्वरूपं,
संस्पर्शतो ममगिरो मम पुण्यदा स्युः ।

कर्तौस्कुतान्यपि जलानि बिषच्छदानि,

जायन्त एवहि गरुत्मणितः प्रसंगात् ॥४॥

उच्चैर्भवंतमवलंब्य विधीयमानं,

स्तुत्यादिकं किमपि यत्तदिहात्मने स्यात् ।

कृत्वाकरेऽब्दममलं हि विरच्यमानं,

नेपथ्वमुत्तमगुणाय निजस्य नास्य ॥५॥

इति स्तुतिं पठित्वा मंड़लोपरि पुष्पांजलि क्षिपेत्

देवाधिदेवं वृषभं जिनेशं इक्ष्वाकुवंशस्य परं पवित्रं ।
संस्थापयामीह पुरं प्रसिद्धं, जगत्सुपूज्यं जगतां पतिं च ॥

ॐ ह्रीं देवाधिदेव वृषभजिन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अनच्छाच्छताकारि संगच्छदच्छं,

सरूपैस्सुभूपैरिवानन्दकूपैः ।

अजीवैर्जगज्जीव जीगैरिवीच्चैः;

यजे देवमाद्यं समाद्यम्बुकंदं ॥१॥

ॐ ह्रीं वृषभतीर्थंकराय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सुगन्धैस्सुगंधीकृताशेषगंधैः;

प्रबन्धप्रबन्धैस्सुकर्पूरपूरैः ।

अमायं कषायस्वकायप्रहार्यं,

यजे देवमाद्यं समाद्यम्बुकंदं ॥२॥

ॐ ह्रीं वृषभतीर्थङ्कराय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

क्षतैस्त्वक्षतैं रक्षतैरक्षताप्तैं,

क्षताचेतपक्षैरिव श्वेतपक्षैः।

विपक्षाक्षेपक्षक्षिपाक्षिकपेशं,

यजे देवमाद्यं समाध्यम्बुकंदं ॥३॥

ॐ ह्रीं वृषभतीर्थङ्कराय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अराजन्नाराजत्सुराजीवराजी,

लसत्केतकी जातजात्यादि पुष्पैः।

अपङ्गस्वरूपं चिदानन्द रूपं;

यजे देवमाद्यं समाध्यम्बुकंदं ॥४॥

ॐ ह्रीं वृषभतीर्थङ्कराय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शतच्छिद्रफेण्यर्द्धचन्द्रैः पुटीभि-

र्लसद्व्यञ्जनाशल्यशाल्योदनाद्यैः।

परित्यक्तसंगं कृतानंगभंगं;

यजे देवमाद्यं समाध्यम्बुकंदं ॥५॥

ॐ ह्रीं वृषभतीर्थङ्कराय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुपात्रस्थितस्नेहवृत्तिप्रकाशैः;

प्रदीप्तैः प्रदीपीकृताशांगनास्यैं।

लसत्सज्ञनाभैर्गुणाशून्यमध्यैः।

यजे देवमाद्यं समाध्यम्बुकंदं ॥६॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथतीर्थङ्कराय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वमग्नौ विनिक्षिप्य दीर्गन्ध्यबन्धं;
दशाशास्यमुच्चैः करोति त्रिसन्ध्यम् ।
तदुद्दामकृष्णागुरुद्रव्यधूपैः ।
यजे देवमाद्यं समाध्यम्बुकंदं ।
ॐ ह्री वृषभतीर्थङ्कराय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
लसंन्जम्बुजम्वीरनारंग निम्बू,
प्रपक्वोरुरम्भाम्रपूगप्रमुख्यैः; ।
फलैः सत्फलीभूतमोक्षैकवृक्षं ।
यजे देवमाद्यं समाध्यम्बुकंदं ।।
ॐ ह्री वृषभतीर्थङ्कराय फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
जगत्तापपापव्यपोहप्रभावं ।
सदैवादिनाथं सहर्षं यजेद्यः ।
,विकल्पानुयातस्वरूपैकमुक्ति,
झटित्येति संसारवल्लीं निहत्य ।।
ॐ ह्रीं श्री वृषभनाथतीर्थङ्कराय अनर्धपदप्राप्तयेऽर्धं निर्वपा०।
यस्यात्र नाम जपतः पुरुषस्यलोके ।
पापं प्रयाति बिलयं क्षणमात्रतो हि ।
सूर्योदये सति यथा तिमिरस्तथां तं ।
वंदामि भव्यसुखदं वृषभं जिनेशं । पुष्पं ।।

इत्याशीर्वादः ।

(१)

(बसन्ततिलकावृत्तम्) सर्वविघ्ननाशक

भक्तामर-प्रणतमौलि-मणिप्रभाणा
मुद्योतकं दलित-पापतमो-वितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥

भक्त अमर नत मुकुट सुमणियों, की सु-प्रभा का जो भासक ।
पापरूप असिसघन तिमिर का, ज्ञान-दिवाकार-सा नाशक ॥
भवजल पतितजनों को जिसने. दिया आदि में अवलम्बन ।
उनके चरण-कमल का करते, सम्यक बारम्बार नमन ॥१॥

अर्थ-विशेष वैभवशाली देवों से पूजित, अपने तथा औरों के पाप समूह के नाशक और अपने वीतराग उपदेश द्वारा प्राणियों को संसार समुद्र से निकालने वाले जिनेन्द्रदेव के चरणों को नमस्कार कर मैं वह स्तुति करता हूं ॥१॥

दोहा:- आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविध करतार ।
धरम धुरन्धर परम गुरु, नमो आदि अवतार ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं प्रणतदेवसमूहमुकुटाग्रमणिद्योतकाय महापापांधकार बिनाशकाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[२]

सकलरोगनाशक

य: संस्तुत: सकलवाङ्-मयतत्वबोधा-

दुद्भूत बुद्धि-पटुभि: सुरलोकनाथै: ।

स्तोत्रै र्जगत्त्रितयचित्त – हरैरुदारै:

स्तोष्ये किलाहमपितं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥

सकल वाङ्मय तत्वबोध से, उद्भव पटुतर धी-धारी ।
उसी इन्द्र की स्तुति से हैं, वन्दित जन-जन मन हारी ॥
अति आश्चर्य की स्तुति करता, उसी प्रथम जिनस्वामी की ।
जगनामी-सुखधामी तद् भव-शिवगामी अधिरामी की ॥२॥

अर्थ:–सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग का ज्ञान होने से प्रखर बुद्धि युक्त इन्द्रों ने तीनों लोकों के चित्त को लुभाने वाले प्रशस्त स्तोत्रों से जिसकी स्तुति की थी उन आदिनाथ भगवान की स्तुति करने के लिये मैं अल्पज्ञ प्रवृत होता हूं। यह आश्चय की वात है ॥२॥

सुरनत मुकुट रतन छवि करें, अन्तर पाप तिमिर सब हरें ।
जिनपद वन्दों मनवचकाय, भव जल पतित उधरन सहाय ॥
श्रुतपारग इन्द्रादिक देव, जाको थुति कोनो कर सेव ।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिसप्रभु की वरणों गुणमाल ।

ॐ ह्रीं गणधरचारणसमस्तरिषीन्द्र–चन्द्रादित्यसुरेन्द्रनरेन्द्र-व्यन्तरेन्द्रनागेन्द्रचतुर्विधमुनीन्द्रस्तुतचरणारविंदाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपा०

[३]

सर्वसिद्धि दायक

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ ।
स्तोतुं समुद्यतमति विगतत्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥

स्तुति को तय्यार हुआ हूँ; में निर्बुद्धि छोड के लाज ।
विज्ञजनों से अर्चित हे प्रभु मन्दबुद्धि की रखना लाज ॥
जल में पड़े चन्द्र मंडल को बालक बिना कौन मतिमान ।
सहसा उसे पकड़ने वाली, प्रबलेच्छा, करता मतिमान ॥३॥

अर्थ:-हे देवों के द्वारा पूजनीय जिनेन्द्र ! विशेष बुद्धि के न होने पर भी जो मै आपकी स्तुति करने में तत्पर हो रहा हू. यह मेरी ढ़ीठता ही है, क्योंकि मेरा यह प्रयत्न पानी में प्रतिबिम्बित चन्द्र के प्रतिबिम्ब को बड़े चाव से पकडने वाले बालक की भांति ही है ॥३॥

चौ०:- विबुध वंद्य पद मैं मतिहीन,
होनिलज्ज थुति मनसा कीन ।
जल प्रतिबिव बुद्ध को गहै ।
शशि मण्डल वालक ही चहै ॥३॥

ॐ ह्रीं विगतबुद्धिगर्वपहारसहितश्रीमानतुङ्गाचार्यभक्तिसहिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्थं निर्वपामीति स्वाहा ।

(४)

जलजन्तुमोचक

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धया ।
कल्पान्त – कालपवनोद्धत – नक्र – चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥ ४ ॥

हे जिन ! चन्द्रकांत से बढ़कर, तब गुण विपुल अमल अतिश्वेत
कह न सकें नर हें गुण-सागर, सुर-गुरु के सम बुद्धि समेत ॥
मक्र-नक्र-चक्रादि जन्तु युत, प्रलयपवन से बढ़ा अपार ।
कौन भुजाओं से समुद्र के, हो सकता है परले पार ॥४॥

अर्थः–हे गुणनिधे ! जिस तरह प्रलयकाल की प्रचण्ड वायु से कुपित और लहराते हुये हिंसक मगरमच्छों से परिपूर्ण समुद्र को कोई भुजाओं से नही तर सकता, उसी प्रकार बृहस्पति के सामन बुद्धिमान पुरुष भी आपके निर्मल गुणों का वर्णन नहीं कर सकता, फिर मुझ अल्पज्ञ की तो बात ही क्या है ।॥ ४ ॥

भाषा–गुन समुद्र तुम गुन अविकार,
कहत न सुरु गुरु पावै पार ।
प्रलय पवन उद्धत ज़लजन्तु,
जलधि तिरै को भुजवलवन्तु ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं त्रिभुवनगुणसमुद्रचन्द्रकांतिमणितेजशरीरसमस्तसुरनाथ-स्तुत श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[५]

अक्षिरोग संहारक

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश ।
कर्तुं स्तवं विगतिशक्तिरपि प्रवृत्तः ॥
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥५॥

वह मैं हूं कुछ शक्ति न रखकर, भक्तिप्रेरणा से लाचार
करता हूं स्तुति प्रभु तेरी; जिसे न पौर्वापर्य बिचार ।।
निजशिशु को रक्षार्थ आत्म-बल, बिना बिचारे क्या न मृगी ।
जाती है मृगपति के आगे, प्रेमरंग में हुई रंगी ।। ५ ।।

अर्थः—हे मुनिनाथ ! जैसे हरिणी शक्ति न रहते हुये भी केवल प्रेमवश अपने बच्चे की रक्षा के लिये सिंह का सामना करती है उसी प्रकार मैं बौद्धिकशक्ति न होने पर भी श्रद्धामात्र से आपका स्तवन करने के लिये प्रवृत्त हुआ हू ।। ५ ।।

सो मैं शक्ति हीन थुति करुं,
भक्ति भाववश कछु नहि डरूं,
ज्यों मृगि निजसुत पालन हेत;
मृगपति सन्मुख जाय अचेत ।। ५ ।।

ॐ ह्रीं समस्तगणधरादिमुनिवरप्रतिपालकमृगवालवत श्रीआदि परमेश्वराय अर्धम निर्वपामीति० ।

[६]

सरस्वती-भगवती-विद्या प्रसारक

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतुः ॥६॥

अल्पश्रुत हूं श्रुतवनों से, हास्य कराने का ही धाम ।
करती है बाचाल मुझे प्रभु, भक्ति आपकी आठों याम ॥
करती मधुर गान पिक मधु में, जग़जन मनहर पति अभिराम ।
उसमें हेतु सरस फल फूलों, से युत हरे-भरे तरु-ग्राम ॥६॥

अर्थः-हे जिनेश ! जिस तरह अबोध कोयल वसन्त ऋतु में केवल आम्र मन्जरी का निमित्त पाकर मधुर ध्वनि करती है, उसी प्रकार अल्पज्ञ और विद्वानों के हास्यपात्र मुझे केवल आपकी भक्ति ही आपकी स्तुति करने के हेतु जबरन बाचाल कर रही हैं ॥६॥

मैं शठ सुधी हसन को धाम,
मुझे तव भक्ति बुलावै राम ।
ज्यों पिक अंब कली परभाव,
मधु ऋतु मधुर करै आराव ॥६॥

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रचन्द्रभक्ति सर्वसौख्यतुच्छभक्तिबहुसुखदायकाय जिनेन्द्राय जिनादिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[७

सर्वदुरित सङ्कट क्षुद्रोपद्रव निवारक

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षय--मुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलिनील-मशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वर-मन्धकारम् ॥७॥

जिनवर की स्तुति करने से,चिरसंचित भविजन के पाप ।
पल भर में भग जाते निश्चित,इधर-उधर अपने ही आप ॥
सकललोक में व्याप्त रात्रि का;भ्रमर सरीखा काला ध्वान्त
प्रातः रवि की उग्रकिरण लख, हो जाता क्षण में प्राणान्त ॥

अर्थ:- हे प्रभो ! जिस तरह सूर्य की किरणों द्वारा रात्रि का समस्त अंधकार नष्ट हो जाता है उसी तरह आपके स्तवन से प्राणियों का अनेक जन्म में सन्चित पाप नष्ट हो जाता है ।

तुम जस जपत जन छिन मांहि;
जनम जनम के पाप नसांहि,
ज्यों रवि उगै फट ततकाल,
अलिवत नील निशातम जाल ॥७॥

ॐ ह्रीं अनन्तभवपातकसर्वविनाशकायतवस्तुतिसौख्यकाय श्री-आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति० ।

[८]

सर्वारिष्ट योग निवारक

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-

मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।

चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,

मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥८ ॥

मैं मति-हीन दीन प्रभु तेरी, शुरु करुं स्तुति अघहान ।

प्रभु-प्रभाव ही चित्त हरेगा, सन्तों का निश्चय से मान ।

जैसे कमल-पत्र पर जल-कण मोती कैसे आभावान ।

दिपते है फिर छिपते है असली मोती में हे भगवान ॥ ८ ॥

अर्थ- हे प्रभो ! जिस तरह कमलिनि के पत्र पर पड़ी हुँई पानी की बूंद उस पत्ते के प्रभाव से मोती के सामन सुन्दर दिखकर दर्शकों के चित्त को प्रसन्न करती है उसी प्रकार मुझ मन्दबुद्धि द्वारा की गई आपकी स्तुति भी आपके प्रभाव से सज्जनों के चित्त को प्रसन्न करेगा ॥ ८ ॥

भाषा:- तव प्रभावतैं कहूं विचार

होसी यह थुति जनमनहार ।

ज्यों जल कमल पत्रपै परै

मुक्ता फलकी दुति विस्तरै ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनेन्द्रस्तवनसत्पुरुषचित्तचमत्कारा य आदिपरमेश्वराय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

[९]

सप्तभयसंहारक अभीप्सितफलदायक

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं,
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥९॥

दूर रहे स्तोत्र आपका, जो कि सर्वथा है निर्दोष
पुण्य-कथा ही किन्तु आपकी, हर लेती है कल्मष-कोष
प्रभा प्रफुल्लित करती रहती, सर के कमलों को भरपूर ।
फेंका करता सूर्य-किरण को, आप रहा करता है दूर ॥९॥

भावार्थ:- हे जिनेश ! आपके निर्दोष स्तवन में तो अचिन्त्य शक्ति है ही परन्तु आपकी पवित्र कथा का सुनना ही प्राणियों के पापों को नष्ट कर देता है । जैसे सूर्य तो दूर ही रहता है परन्तु उसकी उज्ज्वल किरणें ही सरोवरों में कमलों को विकसित कर देती हैं ।

तुम गुण महिमा हत दुख-दोष ।
सो तो दूर रहो सुख पोष ।
पाप विनाशक है तुम नाम;
कमल विकाशी ज्यों रविधाम ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं जिनपूजनस्तवनकथाश्रवणेन जगत्रयभव्यजीवसमस्तपापौघविनाशनाय श्री आदिपरमेश्वराय निर्वपामीति।

[१०]

कूकरविषविवारक

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किम्वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥

त्रिभुवनतिलक जगतपति हे प्रभु ! सद्गुरुओं के हे गुरुवर्य ।
सद्भक्तों को निजसम करते, इसमें नहीं अधिक आश्चर्य ॥
स्वाश्रित जन को निजसम करते, धनी लोग धन धरनी से ।
नहीं करें तो उन्हे लाभ क्या ? उन धनिकों की करनी से ॥

भावार्थ:-हें भुवनरत्न ! यदि सत्यार्थ गुणों द्वारा आपकी स्तुति करने वाले मानव आपके ही सुदृश हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य नही है, क्योंकि संसार में उस स्वामी से लाभ ही क्या ? जो अपने अधीन व्यक्तियों को अपने समान नहीं बना लेवे ॥१०॥

नहि अचरम्भ जो होहि तुरन्त,
तुमसे तुमगुण वरणत सन्त ।
जो अधीन को आप समान,
करै न सो निन्दित धनवान ॥१०॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यगुणमण्डित समस्तोपमासहियात श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति ।

[११]

अभीप्सित-आकर्षण

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत ।१२।

हे अनिमेष विलोकनीय प्रभु; तुम्हे देखकर परम पवित्र।
तोषित होते कभी नहीं है नयन मानवों के अन्यत्र ।।
चन्द्र-किरण सम उज्ज्वल निर्मल; क्षीरोदधि का कर जलपन
कालोदधि का खारा पानी, पीना चाहें कौन पुमान ।।११।।

अर्थः-हे लोकोत्तम ! जैसे क्षीर सागर के निर्मल और मिष्ट जल का पान करने वाला मनुष्य अन्य समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा नहीं करता उसी तरह आपकी वीतरागमुद्रा को निरख कर मनुष्यों के नेत्र अन्य देवों की सरागमुद्रा के देखने से तृप्त नहीं होते ।।११।।

इकटकजन तुमको अविलोय,
और बिषै रतिकरैं न सोय।
को करि क्षीर जलधि जलपान,
क्षार नीर पीवैं मतिमान ।।११।।

ॐ ह्रीं जिनेन्द्रदर्शनअनन्तभवखचितअघसमूहविनाशाय प्रथमश्री जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[१२]

हस्ति-मद-विदारक, वांछित-रूप-प्रदायक

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक – ललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां:
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥

जिन जितने जैसे अणुओं से, निर्मापित प्रभु तेरी देह ।
थे उतने वैसे अणु जग में, शान्त–राग–मय निःसन्देह ॥
हे त्रिभुवन के शिरोभाग के अद्वितीय आभूषण–रूप ।
इसीलिये तो आप सरीखा नहीं दूसरों का है रूप ॥१२॥

अर्थः–हे लोकशिरोमणे ! आपके शरीर की रचना जिन पुद्गल परमाणुओं से हुई है वे परमाणु संसार में उतने ही थे । यदि अधिक होते तो आप जैसा रूप और का भी होना चाहिये था किन्तु वास्तव में पृथ्वी पर आपके समान सुन्दर कोई दूसरा नहीं है ॥१२॥

प्रभु तुम वीतराग गुणलीन
जिन परमाणु देह तुम कीन ।
हैं तितने ही ते परमानु,
यातैं तुम सम रूप न आनु ॥१२॥

ॐ ह्रीं त्रिभुवनशांतिस्वरूपगुण त्रिभुवनतिलकाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घं निर्व०ा० ।

[१३]

लक्ष्मी-सुख-प्रदायक, स्वशरीररक्षक

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्रहारि,
नि:शेष - निर्जित--जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क--मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ॥१३॥

कहां आपका मुख अतिसुन्दर; सुर-नर-उरग नेत्र-हारी ।
जिसने जीत लिये सब जग के, जितने थे उपमाधारी ॥
कहाँ कलङ्की वङ्क चन्द्रमा, रङ्क-समान कीट-सा दीन ।
जो पलाश-सा फीका पड़ता, दिन में हो करके छवि-छीन ॥१३॥

अर्थ:- हें प्रभो ! आपके मुख को चन्द्रमा की उपमा देने वाले विद्वान गलती करते है क्योंकि आपके मुख की प्रभा कभो फीकी नहीं पडती परन्तु चन्द्रमा की प्रभा दिन में फीकी पड़ जातो हैं। तथा चन्द्रमा कलंकी है, किन्तु आपका मुख कलंक रहित है ॥ १३ ॥

कहं तुम मुख अनुपम अविकार,
सुर नर नाग नयन मनहार
कहां चन्द्रमण्डल सकलंक,
दिन में ढालपत्र समरंक ॥ १३ ॥

ॐ ह्री त्रैलोक्यविजयीरुपअतिशय अनन्तचन्द्रतेजजित सदातेजपुंजमानाय श्रीं आदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[१४]

आधि-व्याधि नाशक

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कलाकलाप--
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं;
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥

तब गुण पूर्ण-शशांक कान्तिमय, कला-कलापों से बढ़के ।
तीनलोक में व्याप रहे हैं; जो कि स्वच्छता में चढके ॥
विचरें चाहें जहां कि जिनको, जगन्नाथ का एकाधार ।
कौन माई का जाया रखता, उन्हें रोकने का अधिकर ॥१४॥

अर्थः-हे गुणाकार ! जैसे किसी राजाधिराज के आश्रित व्यक्ति को जहां तहां इच्छानुसार घूमते रहते कोई रोक नहीं सकता उसी प्रकार आपके आश्रित कीर्ति आदिक गुणों को त्रिलोक में कोई रोक नही सकता अर्थात आपके गुण लोकत्रय में व्याप्त हो रहे हैं ॥१४॥

पूरनचन्द ज्योति छविबंत,
तुम गुन तीन जगत लंधंत ।
एक नाथ त्रिभुवन आधार,
तिन विचारत को करै निवार ॥१४॥

ॐ ह्रीं शुभ गुणातिशयरूपत्रिभुवनजिनजिनेन्द्रगुणविराजमानाय श्रीप्रथमजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[१५]

सन्मान-सौभाग्य-सम्वर्द्धक

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित ॥१५॥

मद की छकीं अमर ललनाएं, प्रभु के मन में तनिक विकार
कर न सकीं आश्चर्य कौन सा, रह जाती हैं मन को मार ॥
गिरि-गिरि जाते प्रलय पवन से, तो फिर क्या वह मेरु शिखर
हिल सकता है रंच-मात्र भी, पाकर झंझाबात प्रखर ।१५।

अर्थ:- हे मनोविजयिन् ! प्रलय की पवन से यद्यपि अनेक पर्वत कम्पित हो जाते हैं परन्तु सुमेरु पर्वत लेशमात्र भी चलायमान नही होता उसीप्रकार देवाङ्गनाओं ने यद्यपि अनेक महान देवों का चित्त चलायमान कर दिया परन्तु आपका गम्भीर चित्त किसी के द्वारा लेशमात्र भी चलायमान नहीं किया जा सका ॥१५॥

जो सुरतिय विभ्रम आरम्भ,
मन न डिग्यो तुम तौन अचम्भ ।
अचल चलावै प्रलय समीर,
मेरु शिखर डगमगैं न धीर ॥१५॥

ॐ ह्रीं मेरुवदचलशीलशिरोमणये चतुर्विधवनिताविकाररहित शील समुद्राय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा

[१६]

सर्व विजयदायक

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैलपूर,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां;
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ? जगत्प्रकाश॥१६॥

धूम न बत्ती तैल बिना ही, प्रकट दिखाते तीनों लोक।
गिरि के शिखर उड़ाने वाली, बुझा न सकती मारुत झोक॥
तिस पर सदा प्रकाशित रहते, गिनते नहीं कभी दिन रात।
ऐसे अनुपम आप दीप हैं, स्व-पर-प्रकाशक जग विख्यात॥१६।

अर्थः—हे नाथ ? आप उस अलौकिक दीपक के समान है जिसमें धुँआ बत्ती और न तेल ही है, और जो पर्वतों के चलायमान करने वाले पवन के कदाचित भी गम्य नही हैं। इसलिए आप जगत् को प्रकाशित करने वाले अद्वितीय दीपक के समान है। ॥१६॥

धूम रहित वाती गत नेह,
परकाशै त्रिभुवन घर एह।
वातगम्य नाहीं परचण्ड;
अमर दीप तुम बलो अखण्ड ॥१६॥

ॐ ह्रीं धूम्रस्नेहवर्त्यादिविघ्नरहितत्रैलोक्यपरमकेवलदीपकाय श्री प्रथमजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति०।

[१७]

सर्वरोग निरोधक

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर - निरुद्ध - महाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र! लोके॥१७॥

अस्त न होता कभी न जिसको, ग्रस पाता है राहु प्रबल ।
एक साथ बतलाने वाला, तीन लोक का ज्ञान विमल ॥
रुकता कभी प्रभाव न जिसका, बादल की आकर के ओट ।
ऐसी गौरव-गरिमा वाले, आप अपूर्व दिवाकर कोट ॥१७॥

अर्थः—हे मुनीन्द्र ! राहु से सूर्य ग्रसा जाता है, बादलों में छिप जाता है और प्रतिदिन निकलता है, लेकिन आप उस दिव्य सूर्य के समान हैं, जो न तो कभी अस्त होता हैं, और न राहु से ग्रसा जाता है और न बादलों में छिप सकता है और आप तो एक ही समय में तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले हैं। इसलिए आप सूर्य को महिमा को भी उल्लघन करते हैं।

छिपहु न लुपहु राहु की छांहि,
जग परप्रकाश हो छिनमांहि ।
धन अनवर्त्त दाह विनि वार,
रवितें अधिक धरो गुणसार ॥१७॥

ॐ ह्रीं राहुचन्द्रपूजितनिरावरणज्योतिरूपलोकाय लोकितसदोदयाय आदि परमेश्वराय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा ।

[१८]

शत्रु सैन्य स्तम्भक

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प - कांति,
विद्योतयज्जगदपूर्व - शशाङ्क - बिम्बम् ॥

मोह महातम दलने वाला, सदा उदित रहने वाला ।
राहु न बादल से दबता पर; सदा स्वच्छ रहने वाला ॥
विश्व प्रकाशक मुख सरोजतव, अधिक कांतिमय शाँतिस्वरुप
है अपूर्व जग का शशि-मण्डल, जगत शिरोमणि शिव का भूप

अर्थ:- हे भगवन् ! आपका अधिक ज्योतिर्मयी मुख मण्डल उस विलक्षण चन्द्रमा के बिम्ब के समान शोभित होता है, जो सदा उदय रहकर मोहरुपी अन्धकार को नष्ट करता है, न राहु से ग्रसा जाता है और न बादलों में छिप सकता है । ऐसे आप जगत को प्रकाशित करने वाला अपूर्ण चन्द्रमा हैं।

सदा उदित विदलित मनमोह,
विघटित नेह राहु अविरोह ।
तुम मुख कमल अपूरब चन्द,
जगद विकाशी ज्योति अमंद ॥१८॥

ॐ ह्रीं नित्योदयरूपअगम्य राहुत्रिभुवनसर्वकलासहितविराजमानाय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घ निर्वं पामीति स्वाहा ।

] १९]

उच्चाटननादि रोधक

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमःसु नाथ ?
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरै र्जलभारनम्रैः ॥१९॥

नाथ आपका मुख जब करता, अन्धकार का सत्यानाश।
तब दिन में रवि और रात्रि में चन्द्र-बिम्ब में विफल प्रयास
धान्य-खेत जब धरती तल के पके हुये हों अति अभिराम।
शोर मचाते जल को लादे; हुये घनों से तब क्या काम।१९।

अर्थः- हे त्रिलोकीनाथ ! जिस प्रकार अनाज के पक जाने पर जल का बरसना व्यर्थ है, उस जल से कीचड होने के सिवाय और कोई लाभ नहीं होता उसी प्रकार आपके मुखचन्द्र के द्वारा जहां अन्धकार नष्ट हो चुका है, वहां दिन में सूर्य से और रात्रि में चन्द्र से कोई लाभ नहीं ॥१९॥

निश दिन शशि रवि को नहीं काम,
तुम मुख चन्द्र हरैं तम घाम।
जो स्वभावतें उपजै नाज,
सजल मेघ तो कौनहु काज ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रसूर्योदयास्तरजनीदिवारहितपरमकेवलोदय सदादीप्ति विराजमानाय श्रीआदिदेवाय परमेश्वराय अर्घं निर्वपा०।

[२०]

सन्तान–सम्पत्ति-सौभाग्य प्रसाधक

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

जैसे शोभित होता प्रभु का, स्वपर-प्रकाशक उत्तम ज्ञान ।
हरिहरादि देवों में वैसा, कभी नहीं हो सकता भान ॥
अति ज्योतिर्मय महारतन का; जो महत्व देखा जाता ।
क्या वह किरणाकुलित कांच में, अरे कभी लेखा जाता ॥२०॥

अर्थः–हे सर्वज्ञ ! निज और पर का प्रकाशक तथा निर्मल जैसा ज्ञान आप में सुशोभित होता है. वैसे ज्ञान ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि किसी अन्य देव में नहीं होता । क्योंकि तेज की शोभा महा-मणि में ही होती है न कि कांच के टुकड़े में ॥२०॥

जो सुबोध सोहैं तुममाहिं,
हरिनर आदिक में सो नाहिं ।
जो दुति महा रतन में होय,
काचखण्ड पावै नहिं सोय ॥२०॥

ॐ ह्रीं हरिहरादिज्ञानरहितपरमज्योतिःकेवलज्ञानसहिताय आदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[२१]

सर्व सौख्य सौभाग्य साधक

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपिः,॥२१।

हरिहरादि देवों का ही मैं, मानुं उत्तम अवलोकन ।
क्योंकी उन्हें देखने भर से, तुझसे तोषित होता मन ॥
है परन्तु क्या तुम्हे देखने, से हे स्वामिन ! मुझको लाभ ।
जन्म-जन्म में लुभा न पाते, कोई यह मेरा अमिताभ ।.२१॥

अर्थ :–हें नाथ ! मैं महादेव विष्णु आदि का देखना ही अच्छा समझता हूं, जिनके देखने से हृदय तुम में सन्तोष को प्राप्त होता है? लेकिन आपके मनोहारि दर्शन से क्या ? जिससे कि पृथ्वी में अन्य कोई देव दूसरे जन्म में भी मन हरण नहीं कर सकता। ॥२१॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहिदेख वीतराग तू पिछानिया ।
क़छू न तोहि देखिक़े जहां तूही विशेखिया,
मनोग चित्तचोर और भूलहूं न पेखिया ॥२१॥

ॐ ह्रीं त्रिभुवनमनोमोहनजिनेन्द्ररूपान्यदृष्ठांतरहितपरम मन्डिताय श्रीआदि परमेश्वराय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा ।

[२२]

भूत पिशाचादि वाधा निरोधक

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्ररश्मि,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥

सौ सौ नारी सौ सौ सुत को, जनती रहतीं सौ सौ ठौर ।
तुम से सुत को जनने वाली, जननी महती क्या है और ॥
तारागण को सर्व दिशाएं, धरें नहीं कोई खाली ।
पूर्व दिशा की पूर्ण प्रतापी, दिनपति को जानने वाली ॥

अर्थ:-हें महीतिलक ! जिस प्रकार सूय को पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है, अन्य दिशाएं नहीं, उसी प्रकार एक आपकी ही ऐसी माता है जो आप जैसे पुत्ररत्न को पैदा कर सकीं अन्य किसी माता को ऐसे पुत्ररत्न को पैदा करने का सौभाग्य उपलब्ध नहीं हुआ ॥२२॥

अनेक पुत्रवन्तिनी नितम्बिनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै,
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री जिनवरमाताजनितजिनेन्द्रपूर्वदिगृ भास्कर केवलज्ञान भास्कराय श्रीआदि ब्रह्मजिनाय अर्घं निर्वं ।

[२३]

प्रेतबाधा निवारक

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवःशिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥

तुम को परमपुरुष मुनि मानें; विमलवर्ण रवि तमहारी ।
तुम्हें प्राप्त कर मृत्युञ्जय के; बन जाते जन अधिकारी ॥
तुम्हे छोड़कर अन्य न कोई, शिवपुर-पथ बतलाता है ।
किन्तु विपर्यय मार्ग बताकर; भव-भव में भटकता है ॥२३॥

अर्थः– हे योगीन्द्र ! मुनिजन आपको परमपुरुष कर्ममलरहित होने से निर्मल मोहान्धकार का नाशक होने से सूर्य के समान तेजस्वी , आपकी प्राप्ति से मृत्यु न होने के कारण मृत्युंजय तथा आपके अतिरिक्त कोई दूसरा निरुपद्रव मोक्ष का मार्ग नहीं होने से आपको ही मोक्ष का मार्ग मानते हैं । ॥२३॥

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो,
कहैं मुनीश अन्धकारनाश को सुभान हो ।
महन्त तोहि जानकें न होयवश्य काल कै,
न और मोहि मोख पन्थ देहि तोहिं टालकें ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्रीं त्रैलोक्यपावनादित्यवर्णं परमाष्ठोत्तरशतलक्षणनव शत व्यजोपेताय श्रीआदि जिनेन्द्राय अर्घ निर्वपामीति० ।

[२४]

शिरोरोग शामक

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्य–मसंख्यमाद्यं,

ब्रह्माण-मीश्वर - मनन्त - मनङ्गकेतुम ।

योगीश्वरं विदित - योग - मनेक - मेकं,

ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥

तुम्हे आद्य अक्षय अनन्त प्रभ; एकानेक तथा योगीश ।
ब्रह्मा ईश्वर या जगदीश्वर, बिदितयोग मुनिनाथ मुनीश ।
विमल ज्ञानमय या मकरध्वज; जगन्नाथ जगपति जगदीश ।
इत्यादिक नामों कर माने, सन्त निरन्तर विभो निधीश ।।२४।

अर्थ:–हे प्रभो ! सज्जन पुरुष तुमको अक्षय परम ऐश्वर्य सयुक्त (ज्ञान के द्वारा सर्व व्यापक) चिन्तवन में न आनेवाले, असंख्यगुणों वाले आदि तीर्थंकर सकल कर्म रहित, सब देवों के स्वामी अर्थात् ईश्वर, अन्तरहित काम देव के नाश करने के लिये केतु रूप, ध्यानियों के प्रभु, योगादिको जाननेवाले पर्य्यायकी अपेक्षा अनेक रूप, जीव द्रव्यकी अपेक्षा एक रूप, अद्वितीय केवल ज्ञान स्वरूप और कर्म रहित निर्मल कहते हैं। ।।२४।।

अनन्त नित्य चित्त की अगम्य रम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ।
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो;
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध सन्तमान हो ।।२४।।

ॐ ह्रीं ब्रह्माविष्णुश्रीकंठगणपतित्रिभुवनदेवत्वसहिताय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घ निर्वपामीति स्वाहा ।

[२५]

दृष्टिदोषनिरोधक

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय-शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ।२५।

ज्ञान पूज्य है; अमर आपका, इसीलिये कहलाते बुद्ध ।
भुवनत्रय के सुख-संवर्धक, अतः तुम्हीं शङ्कर हो शुद्ध ।।
मोक्ष-मार्ग के आद्यप्रवर्त्तक, अतः बिधाता कहें गणेश ।
तुम सम अवनी पर पुरुषोत्तम, और कौन होगा अखलेश।२५।

अर्थः- हे भगवन् ! देवों ने आपके केवल ज्ञान की पूजा की है इस कारण आप ही बुद्धदेव हो; तीन लोक के जीवों को सुख देने वाले हो इस कारण आप ही शङ्कर हैं। और आपने भलो प्रकार मोक्ष के मर्म का उपदेश दिया है अतः आप ही विधाता है। हे सर्वश्रेष्ठ ! आप सार्थक नामवाले पुरुषोत्तम हैं।

तुम्ही जिनेश बुद्ध हो सुबुद्धि के प्रमानतैं;
तुम्ही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं।
तुम्हीं विधात है सही, सुमोख पन्थ धारतैं,
नरोत्तमो तुम्ही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ।।२५।।

ॐ ह्रीं बुद्धशंकरशेषधर ब्रह्मानामसहिनाय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[२६]

अर्धशिरः पीड़ा विनाशक

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्ति-हराय नाथ !
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥२६॥

तीनलोक के दुःखहरण करने वाले हे तुम्हें नमन ।
भूमण्डल के निर्मल-भूषण आदि जिनेश्वर तुम्हें नमन ॥
हे त्रिभुवन के अखिलेश्वर हो, तुमको बारम्बार नमन ।
भव-सागर के शोषक पोषक, भव्य जनों के तुम्हें नमन ॥२६॥

अर्थः-हे त्रिभुवन संकट मोचन ! (तीन लोक की पोड़ा को हरण करने वाले) हें विश्व के विमल आभूषण (प्रथ्वी तल के निर्मल आभूषण स्वरुप) हे त्रैलोकेश्वर ! (तीन लोक के ईश्वर) ! हे भवाब्धि भंजन ससार समुद्र को सोखने वाले ! हें प्रभो आपको मेरा मस्कार हो ॥२६॥

नमों करू जिनेश तोहि आपदा निवार हो,
नमों करू सूभूरि भूमि लोक के सिंगार हो ।
नमों करू भवाब्धि नीर राशि शोष हेतु हो,
नमों करू महेश तोहि मोख पन्थ देतु हो ॥२६॥

ॐ ह्रीं अधोलोकमयलोकउर्द्ध लोकत्रयकृताहोरात्रिनमस्कार समस्तार्त रौद्रविनाशकत्रिभुवनेश्वराय भवोदधितरण तारण समर्थाय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[२७]

शत्रून्मूलक

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषै-रुपात्त - विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ।२७।

गुणसमूह एकत्रित होकर; तुझमें ये पा चुके प्रवेश ।
क्या आश्चर्य न मिल पाये हो, अन्य आश्रय इन्हें जिनेश ।।
देव कहें जाने वालों से, आश्रित होकर गर्वित दोष ।
तेरी ओर न झांक सके वे, स्वप्नमात्र में हे गुणकोष ।।२७।।

अर्थः– हे मुनीश्वर ! सम्पूर्ण गुण आप में अधिकता से समाये हुये है. और अनेक देवताओं के आश्रित होने से अभिमानो दोषों ने आपकी तरफ स्वप्न में भी निगाह नहीं की हैं; तो बताओ इसमें कौन सा आश्चर्य है ।।२७।।

तुम जिन पूरन गुणगण भरे,
दोष गर्वकरि तुम परिहरे,
और देवगण आश्रय पाय,
स्वप्न न देखे तुम फिर आय ।।२७।।

ॐ ह्रीं श्री परमगुणाश्रि तावगुणानाश्रितश्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[२८]

सर्व मनोरथ प्रपूरक

उच्चैर - शोकतरु - संश्रित - मुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् !
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त – तमो–वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥

उन्नत तरु अशोक के आश्रित, निर्मल किरणोन्नत वाला।
रूप आपका दिपता सुन्दर, तमहर मनहर छवि वाला॥
वितरण किरण निकर तमहारक, दिनकर घनके अधिक समीप
नीलाचल पर्वत पर होकर, नीराजन करता ले दीप॥२८॥

अर्थ:-हे अतिशय रूप! ऊंचे और हरे "अशोक बृक्ष" के नीचे आपका स्वर्णमय उज्जवलरूप ऐसा मालूम होता है जैसा काले-काले मेघ के समीपवर्ती पीतवर्ण सूर्य का मण्डल। यह अशोक बृक्ष प्रातिहार्य का वर्णन है॥२८॥

तरु अशोक तर किरण उदार;
तुमतन शोभित है अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज़ फुरन्त,
दिनकर दिपै तिमिर निहनंत॥२८॥

ॐ ह्रीं अशोकबृक्षप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[२९]

नेत्रपीडा विनाशक

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२८॥

मणि-मुक्ता किरणों से चित्रित, अद्भुत शोभित सिंहासन ।
कान्तिमान् कंचन-सा दिखता जिसपर तव कमनीय वदन ॥
उदयाचल के तुङ्ग शिखर से, मानो सहस्ररश्मि वाला ।
किरण-जाल फ़ैलाकर निकला, हो करने को उजियाला ॥

अर्थः- हे जिनेन्द्र मणियों की किरण पँक्ति से चित्र विचित्र सिंहासन पर स्वर्ण समान मनोहर आपका शरीर ऊंचे उदयाचल के शिखर पर आकाश में सूर्य के विम्ब की तरह अत्यन्त शोभित हो रहा है यह सिंहासन प्रातिहार्य का वर्णन है ॥२५॥

सिंहासन मणि किरण विचित्र,
तापर कन्चन वरण पवित्र ।
तुम तन शोभित किरण विथार,
ज्यों उदयाचल रवितम हार ॥२९॥

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्यसहिताय श्री प्रथम जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[३०]

शत्रु-स्तम्भक

कुन्दावदात-चलचामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्,
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर-वारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

ढुरते सुन्दर चंवर विमल अति, नवल कुन्द के पुष्प-समान।
शोभा पाती देह आपकी, रौप्य धवल-सी आभावान ॥
कनकाचल के तुङ्ग शृङ्ग से, झर-झर झरता है निर्झर।
चन्द्र-प्रभा-सम उछल रही हो, मानो उसके ही तट पर ॥

अर्थः-हे चामराधिपते ! जिस पर देवों द्वारा सफेद चंवर ढ़ोरे जा रहे है ऐसा आपका सुवर्णमय शरोर ऐसा सुहावना मालूम हाता है, जैसा झरने के सफेर जल से शाभित सुमेरु पर्वत का तट। यह चामर प्रातिहार्य का वर्णन है ॥३०॥

कुन्दु पुहुप सितचमर ढुरन्त,
कनक वरन तुमतन शोभन्त।
ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति,
झरना झरै नीर उमगांति ॥३०॥

ॐ ह्रीं श्री चतुःषष्टिचामरप्रातिहार्यसहिताय श्री प्रथम जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[३१]

राज्य सम्मानदायक

अयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध - शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

चन्द्र-प्रभा सम झल्लरियों से, मणिमुक्तामय अतिकमनीय ।
दीप्तिमान् शोभित होते हैं, सिर पर छत्रत्रय भवदीय ॥
ऊपर रह कर सूर्य-रश्मि का; रोक रहे हैं प्रखर-प्रताप ।
मानों वे घोषित करते हैं, त्रिभुवन के परमेश्वर आप ॥३१॥

अर्थ - हे छत्रत्रयाधिपते ! आपके शिर पर सुशोभित, चन्द्र के समान रमणीय सूर्य को किरणों के सन्ताप का रोधक और रत्नों के जड़ाव से सुशोभित "छत्रत्रय" आपके तीनों लोकों के स्वामीपन को प्रकट करता हैं। वह छत्रत्रय प्रातिहार्य है ॥३१॥

ऊंचे रहै सूर दुति लोप,
तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ।
तीन लोक की प्रभुता कहैं,
मोती झालर सौं छवि लहै ॥३१॥

ॐ ह्रीं श्री छत्रत्रयप्रातिहार्यसहिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[३२]

संग्रहणी-संहारक

गम्भीरतार - रवपूरित - दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोक - शुभसङ्गम - भूतिदक्षः !
सद्धर्मराजजय - घोषण - घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥ ३२॥

ऊंचे स्वर से करने वाली, सर्व दिशाओं में गुञ्जन।
करने वाली तीन लोक के जन जन का शुभ-सम्मेलन ॥
पीट रही है डंका—"हो सत् धर्म"-राज की जय-जय।
इस प्रकार बज रही गगन में, भेरी तव यश की अक्षय ।।३२।

अर्थः—हे दुन्दुभिपते ! अपने गम्भीर और उच्च शब्दों से दिशाओं का व्यापक, त्रैलोक्य के प्राणियों को शुभसमागम की विभूति कराने में दक्ष और जैन धर्म के समीचीन स्वामी जिनदेव का यशोगान करने वाला "दुन्दुभि" बाजा आपका सुयश प्रगट कर रहा है। यह दुन्दुभिप्रातिहार्य का वर्णन है ।।३२।।

दुन्दुभी शब्द गहर गम्भीर;
चहुंदिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन जन शिव संगम करैं;
मानो जय जय रव उच्चरै ।।३२।।

ॐ ह्रीं अष्टादशकोटिवादित्रप्रातिहार्य सहिताय श्री परमादि जिनाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

]

सर्वज्वरसंहारक

मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टिरुद्धा।
गन्धोदबिन्दुशुभ - मन्दमरुत्प्रयाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसांतति र्वा ।३३।

कल्पवृक्ष के कुसुम मनोहर, पारिजात एवं मन्दार।
गन्धोदक की मन्दवृष्टि कर-ते हैं समुदित देव उदार॥
तथा साथ ही नभ से बहती, धीमी धीमी मन्द पवन।
पंक्ति बांध कर बिखर रहे हों, मानों तेरे दिव्य-बचन॥३३॥

अर्थ:- हे कुसुमवर्षाधिपते! आकाश से कल्पवृक्षों के फूलों की सुगन्धित जल और मन्द मन्द हवा के साथ जो ऊर्ध्वमुखी और देवकृत वर्षा होती है वह आपकी मनोहर बचनावली के समान शोभायमान होती है। यह पुष्प- बृष्टिप्रातिहार्य का वर्णन है) ॥३३॥

मन्द पवन गन्धोदक इष्ट,
त्रिविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्ट।
देव करें विकसित दल सार,
मानों द्विज पंकति अवतार ॥३३॥

ॐ ह्रीं समस्त पुष्पजातिबृष्टिप्रातिहार्य सहिताय श्री आदि जिनाय अर्धं निर्वपामीति स्वाहा।

[३४]

गर्भ-संरक्षण

शुम्भत्प्रभा-वलय भूरि-विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या-
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥

तीन लोक को सुन्दरता यदि, मूर्तिमान बनकर आवे ।
तन-भा मण्डल की छवि लखकर, तव सम्मुख शरमा जावे ॥
कोटिसूर्य के ही प्रतापसम, किन्तु नहीं कुछ भी आताप ।
जिनके द्वारा चन्द्र सुशीतल; होता निष्प्रभ अपने आप ॥३४॥

अर्थ:-हे भामण्डलाधिपते ! आपके भामण्डल की प्रभा यद्यपि कोटिसूर्य के समान तेजोयुक्त है तथापि सन्ताप करने वाली नहीं है। चन्द्र के समान सुन्दर होने पर भी कान्ति से रात्रि को जीतती है-अर्थात् रात्रि का अभाव करती है। यह "भामण्डलप्रातिहार्य का वर्णन है। ॥३४॥

तन भामण्डल जिनचन्द,
सब दुतिवन्त करत हैं मन्द ।
कोटि शंख रवि तेज छिपाय,
शशि निर्मल निशि करै अछाय ॥३४॥

ॐ ह्रीं श्री कोटिभास्कर प्रभामंडित भामण्डलप्रातिहार्य सहिताय श्री परमादि जिनाय अर्घ निर्वपा० ।

[३५]

ईति–भीति–निवारक

स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्ग णेष्ट:,
सद्धर्म - तत्व- कथनैक–पटुस्त्रिलोक्या: ।
दिव्यध्वनि र्भवति ते विशदार्थसर्व–
भाषास्वभाव–परिणाम-गुणै:प्रयोज्य: ॥३५॥

मोक्षस्वर्ग के मार्ग–प्रदर्शक; प्रभुवर तेरे दिव्य-बचन ।
करा रहे हैं 'सत्य-धर्म' के, अमर–तत्व का दिग्दर्शन ॥
सुनकर जग के जीव वस्तुत:, कर लेते अपना उद्धार ।
इस प्रकार परिवर्तित होते, निज-निज भाषा के अनुसार ।३५।

अर्थ:-हे दिव्यध्वनिपते ! आपकी दिव्यध्वनि स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बतलाती है सब जीवों को धर्यतत्व (हित) का उपदेश देती है। अर्थात् जो प्राणी जिस भाषा का जानकार होता है, आपकी दिव्यध्वनि उनके कान के पास पहुंचकर उसी भाषारूप हो जाती है। (यह दिव्यध्वनि प्रातिहार्य का वर्णन है) ॥३५॥

स्वर्गमोख मारग संकेत,
परम धरम उपदेशन हेत ।
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध,
सर्व भाषा गर्भित हित साध ॥३५॥

ॐ ह्रीं श्रीं जलधरपटलगर्जितध्वनियोजनप्रमाणप्रातिहार्य सहिताय श्री आदि परमेश्वराय अर्घं निर्व० ।

[३६]

लक्ष्मीदायक

उन्निद्रहेमनवपङ्कज - पुञ्जकान्ती,
पर्युल्लसन्नखमयूख - शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

जगमगात नख जिसमें शोभें; जैसे नभ में चन्द्रकिरण ।
विकसित नूतन सरसीरुहसम, हैं प्रभु तेरे विमल चरण ॥
रखते जहां वहां रचते हैं, स्वर्णकमल, सुरदिव्य ललाम ।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उससे अभिराम ॥

अर्थ.-हे पूज्यपाद ! धर्मोपदेश देने के लिये जब आप आर्य-खण्ड में विहार करते है, तब देवगण आपके नीचे कमलों की रचना करते है ॥३६॥

विकसित सुवरन कमल दुति,
नखदुति मिलि चमकाहिं ।
तुमपद पदवी जहँ धरों,
तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥

ॐ ह्रीं हेमकमलोपरिकृतगमनदेवकृतातिशयसहिताय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[३७]

दुष्टता प्रतिरोधक

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥३७॥

धर्म देशना के विधान में; था जिनवर का जो ऐश्वर्य ।
वैसा क्या कुछ अन्य कुदेवों, में भी दिखता है सौन्दर्य ॥
जो छवि घोर-तिमिर के नाशक, रवि में है देखी जाती ।
वैसी ही क्या अतुला कान्ती नक्षत्रों में लेखी जाती ॥३७॥

अर्थ:-हे समवसरणाधिपते ! धर्मोपदेश के समय समवसरणादिक जैसी विभूति आपको प्राप्त हुई, वैसी विभूति अन्य किसी देव को प्राप्त नहीं हुई । ठीक ही है कि जैसी कान्ति सूर्य की होती है वैसी कान्ति शुक्र आदि ग्रहों को प्राप्त हो सकती है क्या ? अर्थात् नहीं ॥३७॥

ऐसी महिमा तुम विषै,
और धरै नहिं कोय ।
सूरज में जो जोत है,
नहिं तारागण होय ॥३७॥

ॐ ह्रीं धर्मोपदेशसमये समवसरणविभूतिमन्डिताय श्री आदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपा०॥

[३८]

हस्तिमदभंजक तथा वैभववर्धक

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोलमूल—
मत्तभ्रमद्भ्रमर - नाद - विवृद्ध - कोपम् ।
ऐरावताभमिभमुद्धत — मापतन्तं,
दृष्ट्वाभयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

लोल कपोलों से झरती है, जहां निरन्तर मद की धार ।
होकर अति मदमत्त कि जिसपर, करते हैं भौंरे गुंजार ॥
क्रोधासक्त हुआ यों हाथी, उद्धत ऐरावत सा काल ।
देख भक्त छुटकारा पाते, पाकर तव आश्रय तत्काल ॥३८॥

अर्थः- हे अभयप्रद ! जो प्राणी आपकी शरण लेते हैं, वे महोन्मत्त उच्छृंखल आक्रमणकारी और अवश हाथी को देखकर भी भयभीत नहीं होते ॥३८॥

मद अवलिप्त कपोल मूल, अलिकुल झंकारैं ।
तिन सुन शब्द प्रचण्ड क्रोध उद्धत अतिधारै ॥
काल बरन विकराल, कालवत सनमुख आवै ।
ऐरावत सो प्रबल; सकल जनभय उपजावै ॥
देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन ।
विपति रहित संपति सहित, वरतै भक्त अदीन ॥३८॥

ॐ ह्रीं श्री मस्तकगलितमदसुरगजेन्द्र महादुद्धरभयविनाशकाय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपा० ।

[३९]

सिंहशक्ति—संहारक

भिन्नेभकुम्भ-गलदुज्ज्वल--शोणिताक्त-
मुक्ताफल - प्रकर - भूषित - भूमिभागः ।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥

क्षत-विक्षत कर दिये गजों ने जिसने उन्नत गण्डस्थल ।
कान्तिमान् गज-मुक्ताओं से; पाट दिया हो अवनी-तल ।
जिन भक्तों को तेरे चरणों, के गिरि को हो उन्नत ओट ।
ऐसा सिंह छलांगे भरकर, क्या उस पर कर सकता खोट।।३९।

अर्थः-हे भगवन् ! विदारे हुये हाथियों के मस्तकों से जो रक्त से भीगे हुए उज्ज्वल मोती पड़ते हैं, उनके समूह से जिसने पृथ्वी को शोभित कर दिया है, और आक्रमण, करने के लिये बांधो हैं चौकड़ी जिसने ऐसा सिंह भी आपके चरण रूपी पर्वतों का आश्रम लेनेवाले मनुष्य पर प्रहार नहीं करता ।

अतिमदमत्त गयंद कुम्भस्थल नखन विदारै,
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै ।
बांकी दाढ़ विशाल, बदन में रसना लोलै ।।
भीम भयानक रूप देखि, जन थर हर डोलै ।
ऐसे मृगपति पगतलै, जो नर आयो होय ।
शरण गहै तुम चरण की बाधा करै न सोय ।

ॐ ह्रीं श्री आदिदेवनामप्रसादान्महासिंहभयविनाशकाय श्री युगादिदेव परमेश्वराय अर्घं निर्वपा० ।

[४०]

सर्वाग्नि शामक

कल्पान्तकाल - पवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥

प्रलय काल की पवन उठाकर, जिसे बढ़ा देती सब ओर।
फिकें फुलिंगे ऊपर तिरछे; अङ्गारों का भी होवे जोर ॥
भुवनत्रय को निगला चाहें, आती हुई अग्नि भभकार।
प्रभु के नाम-मन्त्र जल से वह, बुझ जाती है उस ही बार।

अर्थ:- हे लोकपालक ! आपके गुणगान से भयङ्कर तथा वेग से बढ़ता हुआ दावानल भी भक्तजनों का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता ॥ ४० ॥

प्रलय पवनकर उठी आग को तास पटंतर,
वमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलें निरन्तर।
जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानों,
तडत डाट दव अनल जोर चहुं दिशा उठानों ॥
सो इक छिनमें उपशमें, नाम नीर तुमलेत ।
होय सरोवर परिनमैं विकसित कमलसमेत ॥४०॥

ॐ ह्रीं श्री विश्वभक्षणसमर्थमहावह्निविनाशकाय जिननामजलाय श्रीप्रादि ब्रह्मणे अर्घं निर्वपा० ।

[४१]

भुजंग (सर्प) भय भंजक

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नाम-नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥४१॥

कंठ कोकिला सा अति काला, क्रोधित हो फण किया विशाल ।
लाल-लाल लोचन करके यदि, झपटै नाग महा विकराल ॥
नाम-रूप तव अहि-दमनी का, लिया जिन्होने ही आश्रय ।
पग रख कर निःशङ्क नाग पर, गमन करें वे नर निर्भय ॥४१॥

अर्थः- हे जिनेश्वर ! जिस पुरुष के हृदय में तुम्हारे नामकी गरुण मणि है वह पुरुष अपने पैरों मे लालनेत्र वाले मदोन्मत्त कोयल के कण्ठ के समान काले क्रोध से उद्धत हुये और डसने के लिये फन उठाये हुये साँप पर निडर होकर पांव दे कर चला जाता है ॥ ४१ ॥

कोकिल कण्ठ समान, श्यामतन क्रोध जलन्ता ।
रक्त नयन फुंकार मार विषकण उगलंता ॥
फण को ऊंचा करै, वेगही सम्मुख धाया ।
तवजन होय निशंक देख फणिपति को आया ॥
जो चांपै निज पगदलैं, व्यापै विष न लगार ।
नाग दमन तुम नामकी है जिनके आधार ॥४१॥

ॐ ह्रीं रक्तनयनसर्पजिननामनाग दमन्यौषधये समस्त भवविनाश चर्य श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[४२]

युद्धभय विध्वंसक

वल्गत्तुरंग - गजगर्जित - भीमनाद

माजौ वलं वलवतामपि भूपतीनाम्।

उद्यद्दिवाकरमयूख— शिखापविद्धं,

त्वत्कीर्तनात्तम इवाशुभिदामुपैति ॥४२॥

जहां अश्व की और गजों की, चीत्कार सुन पड़ती घोर।
शूरवीर नृप की सेनाएं, रव करती हों चारों ओर।
वहां अकेला शक्तिहीन नर, जप कर सुन्दर तेरा नाम॥
सूर्य-तिमिर समशूर सैन्य का, कर देता है काम तमाम।४२

अर्थः-हे भगवन्! रण संग्राम में आपके नाम का कीर्तन करने से बलवान् राजाओं का युद्ध करते हुये घोड़ों और हाथियों की गर्जना से जिसमें भयानक शब्द हो रहें हैं, ऐसा सैन्य भी, उदय हुए सूर्य की किरणों के अग्रभाग से नष्ट हुए अन्धकार के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है ॥४२॥

जिस रणमाहिं भयानक रवकर रहे तुरंगम।
घन से गज गरजाहिं मत्त मानों गिरिजंगम॥
अति कोलाहल माहिं बात जहं नाहिं सुनीजै।
राजन को परचण्ड देख बल धीरज छीजै।
नाथ तिहारे नाम तें सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिन कर परकाश तैं अन्धकार बिनशाय॥४२॥

ॐ ह्रीं महासंग्रामभयविनाशकाय सर्वाङ्गरक्षणकराय श्रीप्रथमजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[४३]

शर्व शान्तिदायक

कुन्ताग्रभिन्न—गजशोणित - वारिवाह,

वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे।

युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा:;

स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥

रण में भालों से बेंधित गज; तन से बहता रक्त अपार।
बीर लड़ाकू जहं आतुर हैं, रुधिर–नदी करने को पार।
भक्त तुम्हारा हो निराश तंह, लख अरिसेना दुर्जयरूप।
तब पादारविन्द पा आश्रय, जय पाता उपहार–स्वरूप।४३।

अर्थ:-हे जिनेश्वर! बरछी की नोकों से छिन्न-भिन्न हुये हाथियों के रक्त रूपी जल प्रवाह में बहते हुए और उसको तैरने के लिये आतुर हुये योद्धाओं से जो भयानक हो रहा हैं. ऐसे भीषण संग्राम में आपके चरण कमल रूपी वृक्ष का आश्रय लेने वाले पुरुष अत्यन्त कठिन ऐसे शत्रुओं को जीतते हुए विजय प्राप्त करते हैं।।४३।।

मारै जहां यंद कुम्भ हथियार बिदारै,
उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारै।
होय तिरन असमर्थ महा योधा बलपूरे,
तिमरन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे,
दुर्जन अरिकुल जीत के, जय पावै निकलंक।
तुम पद पंकज मन बसै ते नर सदा निशंक ४३

ॐ ह्रीं महारिपुयुद्धे जयप्रापकाय श्री आदि बृषभेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

[४४]

सर्वापत्तिबिनाशक

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषण - नक्रचक्र-
पाठीनपीठ - भयदोल्वण - वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग शिखरस्थित - यानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥४४॥

वह समुद्र कि जिसमें होवें मच्छ मगर एवं घडियाल ।
तूफां लेकर उठती होवें, भयकारी लहरें उत्ताल ॥
भ्रमर-चक्र में फंसी हुई हो, बीचों बीच अगर जलयान ।
छुटकारा पा जाते दु:ख से, करने वाले तेरा ध्यान ।४४।

अर्थ:-हे जिनेश्वर ! आपके स्मरण करने से भीषण मगर, घडि-याल विशाल मछलियों, पीठों तथा तथा भयंकर वडवाग्नि करके स्तुभित समुद्र में भयंकर भाटों के समूह में जिनके ज़हाज पड़े हुये है, ऐसे पुरुष निर्भय होकर समुद्र पार कर लेते हैं ।

नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भयं उपजावै,
जामै वडवा अग्नि दाहतैं नीर जलवैं ।
पार न पावें जास थाह नहिं लहिये जाको,
गरजै अति गम्भीर लहरिकी गिनति न ताको ।
सुखसों तिरैं समुद्र को, जे तुम गुन सुमराहि,
लोल क़लोलन के शिखर पार यान ले ज़ाहि ॥४४॥

ॐ ह्रीं महासमुद्रचलितवातमहादुर्जयभयबिनाशकाय श्री परमे-श्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[४५]

जलोदरादिरोग एवं सर्वापत्तिहारक

उद्भूतभीषण - जलोदर - भारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः ।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहाः,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥

असहनीउयपन्न हुँआ हो; विकट जलोदर पीड़ा भार ।
जीने की आशा छोडीहो, देख दशा दशनीय अपार ॥
ऐसे व्याकुल मानव पाकर, तेरी पद–रज संजीवन।
स्वास्थ्य-लाभ कर बनता उसका, कामदेव सा सुन्दर तन ॥४५॥

अर्थः–हे पूज्यपाद ! जैसे अमृत के लेप से मनुष्य निरोग और सुन्दर हो जाता है, उसी प्रकार आपके चरण कमल रजरूपी अमृत के लेप से (चरणों की सेवा से) भीषण जलोदर आदि रोगों से पीड़ित मनुष्य भीं कामदेव के समान सुन्दर हो जाते है ॥ ४५ ॥

महा जलोदर रोग भार पीड़ित नर जे हैं,
वात पित्त कफ़ कुष्ट आदि जो रोग गहै है ।
सोचत रहैं उदास नाहि जीवन की आशा,
अति घिनावनी देह धरै दुर्गंधि निवासा ।
तुम पद पंकज़ धूलि को जो लावैं निज़ अंग ।
ते निरोंग शरीर लहि छिनमें होय अनंग ॥४५॥

ॐ ह्रीं दशतापजलंघराष्टदशकुष्ट सन्निपातमहारोगविनाशकाय रमकामदेवरूपलक्ष्मीदायकार्दीजनेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[४६]

बन्धन बिमोचक

आपादकण्ठ – मुरुश्रृङ्खलवेष्टिताङ्गाः,
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

लोह-श्रृङ्खला से जकड़ी है, नख से शिख तक देह समस्त ।
घुटने-जंघे छिले बेड़ियों से अधीर जो है प्रतित्रस्त ॥
भगवान ऐसे बन्दीजन भी, तेरे नाम-मन्त्र की जाप ।
जप कर गत-बन्धन हो जाते; क्षणभर में अपने ही आप ॥४६॥

अर्थः–हे जिनदेव ! जिनके शरीर पांव से लेकर गले तक बड़ा-बड़ी सांकलों से जकडे हुये हैं, और बडी-बड़ी वेड़ियों के पहिरने से जिनकी जंघायें छिल गई हैं, ऐसे मनुष्य आपके नाम रूपी मन्त्र का स्मरण करने से तत्काल बन्धनों से रहित हो जाते हैं

पाँव कंठ ते जकर बाँध सांकल अतिभारी ।
गाढ़ी बेड़ी पैर माँहि जिन जांघ बिदारी ॥
भूख प्यास चिन्ता शरीर दुखजे बिललाने,
सरन नाहिं जिन कोय भूप के वन्दी खाने ।
तुम सुमरत स्वयमेव ही बन्धन सब खुल जाहिं,
छिनमें ते सम्पति लहैं चिता भय बिनसाहिं ॥४६॥

ॐ ह्रीं महाबंधनआपादककंठपर्यन्तवैरीकृतोपद्रवभयविघातकाय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

[४७]

अस्त्रशस्त्रादिशक्ति निरोधक

मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥

वृषभेश्वर के गुणस्तवन का, करते निशिदिन जो चिंतन ।
भय ही भयाकुलित हो उनसे, भग जाता है हे स्वामिन् ॥
कुंजर-समर-सिंह-शोक-रुज; आदि दावानल कारागार ।
इनके अतिभीषण दुःखों का, हो जाता क्षण में संहार ॥४७॥

अर्थः-जो बुद्धिमान् आपके इस स्तोत्रत को पढ़ता है, अध्ययन करता हैं, उसके मदोन्मत्त हाथी, सिंह, अग्नि, सर्प, संग्राम, महोदर रोग और बन्धन इन आठ कारणों से उत्पन्न हुआ भय स्वमेव शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता है ॥४७॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल,
फणपति रण परचण्ड नीर निधि रोग महाबल।
बन्धन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै,
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै ।
इस अपार संसार में शरन नाहिं प्रभु कोय,
यातै तुम पद भक्त को भक्ति सहाई होय ॥४७॥

ॐ ह्रीं सिंहगजेन्द्रराक्षसभूतपिशाचकिनीरिपुजपरमोपद्रव विनाशकाय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[४८]

सर्व सिद्धि दायक

स्तोत्रस्रजंतव जिनेन्द्र! गुणैं - र्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मी ॥४८॥

हे प्रभु तेरे गुणोद्यान की, क्यारी से चुन दिव्य-ललाम ।
गूंथी विविध वर्ण सुमनों की, गुण-माला सुन्दर अभिराम
श्रद्धासहित भविकजन जो भी कण्ठाभरण बनाते हैं ।
मानतुङ्ग-सम निश्चित सुन्दर, मोक्ष लक्ष्मी पाते हैं ॥४८॥

अर्थ-जैसे पुष्पमाला धारण करने से मनुष्य को शोभा (लक्ष्मीं) प्राप्त होती है उसी प्रकार इस स्तोत्र रुपी माला के पहिनने (सदा पाठ करने) से मनुष्य को परम्परा से मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥२८॥

यह गुणमाल विशाल नाथ तुम गुनन संवारी ।
विविध वर्णमय पुहुप गूंथ में भक्ति विथारी ॥
जे नर पहिरे कण्ठ भावना मन में भावै,
मानतुङ्ग ते निजाधीन शिव लक्ष्मी पावै ।
भाषा भक्तामर कियो हेमराज हित हेत,
जे नर पढ़ै सुभावसो ते पावैं शिव खेत ॥४८॥

ॐ ह्रींपठनपाठनश्रोतव्यश्रद्धावनतमानतुं गाचार्यादि समस्त जीव कल्याणदाय श्री आदि परमेश्वराय अर्घं निर्वपामीति० ।

[४६]

वरसुगन्धसुतन्दुल पुष्पकैः,
प्रवरमोदकदीपकधूपकैः ।
फलभरैः परमात्मप्रवर्त्तकं,
प्रवियजे जयदं धनदं जिनम् ॥४६॥

ॐ ह्रीं अष्टचत्वारिंशत्कमलेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।





अथ जयमाला



[भुजंगप्रयात वृत्तम]

अखण्डप्रचण्डप्रतापस्वभावं,
निराकारमुच्चैरनन्तस्वभावम् ।
स्वभावानुभाव क्षतोद्यद्विभावं,
स्वभावाय बन्दे वरं देवमाद्यं ॥१॥
महामोहसन्दोह संरोहदारं,
विकारं प्रसारं प्रहार विचारम् ।
अनल्पं विकल्पं च संकल्प कल्पं,
त्यजन्तं यजे ह्यादिमुध्दूतजल्पम् ॥२॥

बिकायं विमाय सदा निष्कषायं,
ज्वलद्रागरोषादिदोषव्यपायम् ।
अलोकं च लोकं समालोकयन्तं,
भजे नाभिसूनुं समुद्योतयन्तम् ॥३॥

जराजन्ममृत्युव्यपेतं गुणेतं,
समुद्धूतकर्माणमर्थैः समेतम् ।
वियोगं विरोगं वियोगव्यतीतं,
भजे नाभिसूनुं सुशर्मप्रतीतम् ॥४॥

लसद्द्रव्यपर्यायरूपं धरन्तं,
यथाख्यातचारित्रमुच्चैश्चरन्तम् ।
चिदानंदकन्दं जगत्तापकन्दं,
भजे नाभिसूनुं सुदेवृद्धमन्दम् (?) ॥५॥

गतध्यानमालं स्फुरच्चिद्विशालं,
हितारातिजालं विनष्टान्तकालम् ।
मुनिध्येयरूपं त्रिलोकैकभूपं,
भजे नाभिसूनुं सुखागाधकूपम् ॥६॥

अमेयप्रमेयप्रमायिप्रमाणं,
सहायानपेक्षं विधूतप्रमाणम्
अनेकं सदेकं, प्रसर्पद्विवेकं,
भजे नाभिसूनुं गुणारामसेकम् ॥७॥

जगत्पापवल्लीसदाह्वाहुताशं,
महःसूरभापूरसंपूरिताशम् ।
असम्बन्धबन्धं शिवालीनिबन्धं,
भजे नाभिसूनुँ विशेषप्रबन्धम् ॥८॥
भवाभाव भावव्यपायस्वभावं,
भवाभावभावप्रभावप्रभावम् ।
स्वरुपप्रतिष्ठं प्रतिष्ठत्प्रतिष्ठं,
यजे नाभिसूनुँ गरिष्ठं वरिष्ठम् ॥९॥
यजध्वं भजध्वं बुद्धाः संमनुध्वं,
निधध्वं हृदिध्वं विशुद्धादिनाथं ।
चिदानन्दकन्दं स्वरूपोपलब्धि.
यदीह ध्वमन्ते निनीषध्वमेनम् ॥१०॥
ॐ ह्रीं श्रीदेवाधिदेवायबृषभनाथाय अर्घं निर्वपामीति० ।

दीर्घायुरस्तु ! शुभमस्तु ? सुकीर्तिरस्तु !
सद्बुद्धिरस्तु ! धनधान्यसमृद्धिरस्तु !
आरोग्यमस्तु ! विजयोऽस्तु ! महोऽस्तु ! पुत्र
पौत्रोद्भवोऽस्तु तव नाभिसुतप्रसादाद् ॥

❋ पुष्पांजलिं क्षिपेत् ❋

"ॐ ह्रीं श्री अर्हं श्री बृषभनाथ तीर्थंकराय नमः"
इति मंत्रेण लवङ्गैरष्टोत्तरशतं जाप्यं विधेयम्

(५६)

* बारह भावना *

✕ दोहा छन्द ✕

वन्दूं श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान ।
वरणूं बारह भावना जग जीवन हित जान ॥१॥

卐 विष्णुपद छन्द 卐

कहां गये चक्री जिन जीता, भरतखण्ड सारा ।
कहां गये वह रामरु लक्षमन, ज़िन रावण मारा ॥
कहां गये कृष्ण रुकमिनी सतभामा अरु सम्पति सगरी ।
कहां गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी ॥२॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में ।
गये राज तज पांड़व वन को, अगिन लगी तन में ॥
मोह नींद से उठरे चेतन, तुझे जगावन को ।
हो दयाल उपदेश करें गुरु, बारह भावन को ॥३॥

* १ अथिर भावना *

सूरज चांद छिपै निकले ऋतु, फिर-फिर कर आवै ।
प्यारी आयू ऐसी बीते पता नहीं पावै ॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, वह कर नहीं हटता ।
स्वांस चलत यों घटे काठ ज्यों आरेसों कटता ॥४॥

ओस बूंद ज्यों गले धूप में, वा अंजुलिपानी ।
छिन छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी ।।
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग सम्पति सारी ।
अथिर रूप संसार विचारो; सब नर अरु नारी ।।५।।

२ अशरण भावना

काल सिंह ने मृग चेतन को; घेरा भव बनमें ।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मनमें ।।
मँत्र यंत्र सेना धन सम्पत्ति, राज पाट छूटे ।
बश नहीं चलता काल लुटेरा, काय नगर लूटे ।।६।।
चक्र रतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया ।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया ।।
देव धर्म गुरु शरण जगत में और नहीं कोई ।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूं ही उमर खोई ।।७।।

३ संसार भावना

जन्म मरण अरु जरा रोग से, सदा दुखी रहता ।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव, परिवर्तन सहता ।
छेदन भेदन नरक पशु गति, बध बन्धन सहना ।
राग उदय से दुख सुरगति में, कहां सुखी रहना ।।८।।

भोग पुन्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर; खुरपा अरु जाली॥
मानुष जन्म अनेक विपतिमय; कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिले शुभाशुभ, का मेटो लेखा॥९॥

४ एकत्व भावना

जन्मे मरे अकेला चेतन, सुख दुख का भोगी।
और किसीका क्या इक दिन यह देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुखको रोवे पिता पुत्र दारा॥१०॥
ज्यों मेले में पन्थी-जनमिलि, नेह फिरें धरते।
ज्यों तरवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारे॥११॥

५ भिन्न भावना

मोह रूप मृगतृष्णा जग में मिथ्या जल चमके।
मृग चेतन नित भ्रममें उठ उठ; दौड़े थक थक कै॥
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक-भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता॥१२॥

तू चेतन अरू देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले अनादि यतनतें बिछुड़े ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौलों पौरुष थकै न तौलों, उद्यम सो चरना॥१३॥

६ अशुचि भावना

तू नित पोखे यह सूखे, ज्यों धोवै त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग दशा फैली॥
मात-पिता रज बीज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की प्रगट व्याधि घेरी॥१४॥
काना पौंड़ा पड़ा हाथ यह, चूसे तौ रोवे।
फरै अनन्त जु धर्म ध्यानकी भूमि विषैं बोवै॥
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह सपरसत हुये अपावन, निशदिन मलजारी।१५।

७ आस्त्रव भावना

ज्यों सरजल आवन मोरी त्यो, आस्त्रव कर्मनको।
दर्वीत जीव प्रदेश गहे जब, पुद्गलभरमनको॥
भावित आस्त्रब भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतनके।
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन के॥१६॥

पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो ।
पंचरु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो ॥
मोह भावकी ममता टारै, पर परणति खोते ।
करै मोखका यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते ॥१७॥

८ संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तबजल रुक जाता ।
त्यों आस्रवको रोके संवर क्यों नहीं मन लाता ॥
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर; बचन काय मन को ।
दशविध धर्म परीषह बाइस; बारह भावन को ॥१८॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते ।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहां पड़े सोते ॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध भावनसंवर पावै ।
डाट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै ॥१९॥

९ निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पडै भारी ।
संवर रोके कर्म निर्जरा है सोखन हारी ॥
उदयभोग सविपाक समय पक जाय आम डाली ।
दूजो है अविपाक पकावे पाल विषैं माली ॥२०॥

पहली सबके होय नहीं कुछ, सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकती रानी।
इस दुलहन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥१॥

१० लोक भावना

लोक अलोक आकाश मांहि थिर निराधार जानों।
पुरुष रूप कर कटी भये षट, द्रव्यनसों मानों।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादि है।
जीवरु पुद्गल नाचे यामें कर्म उपाधि है॥२२॥
पाप पुन्य सो जीव जगत में; नित सुख-दुख भरता।
अपनी करनी आप भरे सिर, औरन के धरता॥
मोह कर्म को नाश मेट कर, सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोकके, शीश करो वासा॥२३॥

११ बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी॥

उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना ।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुण ठाना ॥२४॥
रत्नत्रय आराधन; दीक्षा का धरना ।
दुर्लभ मुनिवर को व्रत पालन, शुद्ध भाव करना ॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोध ज्ञान पावै ।
पाकर केवल ज्ञान नहीं फिर इस भव में आवे ॥२५॥

१२ धर्म भावना

षठ दरशन अरु बौद्धरु नास्तिक, ने जग को लूटा ।
मूसा ईसा और मुहम्मद, का मजहब झूठा ॥
हो सुछन्द सब पाप करें सिर करताके लावें ।
कोई छिनक कोई करतासे, जग में भटकावे ॥२६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन श्रीजिन की वाणी ।
सप्त तत्व का वर्णन जामें, सब को सुखदानी ॥
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना ।
मंगत इसी यतन से इक दिन भवसागर तरना ।२७।

इति बारह भावना मंगतरायजी सुल्तानपुर निवासी कृत सम्पूर्णम्

 आदिनाथ स्तुति 

जय जय श्री आदि जिन; तुम हो तारन तरन,
भवि जन प्यारे ! इन्द्र धरणेन्द्र स्तुति धर तुम्हारे ।
प्रभु ! तुम सर्वार्थ सिद्धि से आये, माता मरुदेवी के सुत कहाये
नाभि नृप के नन्दन ! तुम हो शत-शत वन्दन, हो हमारे ।
इन्द्र धरणेन्द्र० ॥
कर्मयुग के प्रथम तुम विधाता, लोक हित मार्ग के आदि ज्ञाता
अंक अक्षर कला तुमसे प्रकटे प्रभो, शिल्प सारे । इन्द्र ध. ।
देख नीलांजना के निधन को राज छोड गये देव वन को
योग साधा कठिन, कर्म बंधन गहन तोड डाले । इन्द्र ध.
सिद्ध परमात्मपद पा गये तुम शम्भु ब्रह्मा जिनेश्वर हुये तुम
सिर नवाते हुये गुणगण गाते हुये गण धर हारे । इन्द्रध.
नाथ अपनी चरण भक्ति दीजे आतमगुणसिन्धु में मान कीजे
छीजे आवागमन शिवपुर में हो गमन कर्म भारे । इन्द्र ध.।

* चलते समय *

प्रभू दर्श क़र आज घर जा रहे हैं,
झुका तेरे चरणों में सर जा रहा है ।

१–यहां से कभी दिल न जाने क़ो करता
करें कैसे जाये बिना भी न सरता
अनग़चे हृदय नयन भर आ रहे हैं ।।प्रभू।

२–हुयी पूजा भक्ति न कुछ सेवकाई
न मन्दिर में बहुमूल्य वस्तु चढ़ाई
यह खाली फकत जोर कर जा रहे हैं ।।प्रभू।।

३ –सुना तुमने तारे अधम चोर पापी
न धर्मी सही फिर भी तेरे हैं हामी
हमें भी तो करना अम जा रहे हैं ।।प्रभू।।

४–वुलाना यहां फिर भी दर्शन को अपने
सुमत तुम भरोसे लगे कर्म हरने
जरा लेते रहना खबर जा रहे हैं ।।प्रभू।।



परस्परोपग्रहो जीवानाम

मिलने का पता:-

वीर प्रिंटिंग प्रेस

सुभाष गंज, अशोकनगर

मुद्रक- वीर प्रिंटिंग प्रेस, अशोकनगर